वर्ष : 1
अंक : 1

ISSN : 2229-7227

विक्रमी संवत् : माघ–चैत्र 2067–68
(जनवरी–मार्च, 2011)
www.chintanresearchjournal.com

मूल्य : 250/-

चिन्तन

रिसर्च जर्नल

(कला, मानविकी, समाज–विज्ञान एवं वाणिज्य विषयों पर केंद्रित)

संपादक

आचार्य शीलक राम

आचार्य अकादमी

चुलियाणा रोहज, रोहतक (हरियाणा)

दर्शन-शास्त्र
'चिन्तन' रिसर्च जर्नल (ISSN : 2229-7227)
वर्ष 1, अंक 1 (पृ.सं. 37-40)
विक्रमी संवत् : माघ-चैत्र 2067-68 (जनवरी-मार्च, 2011)

समकालीन भारतीय समाज में दर्शन-शास्त्र की उपादेयता

डॉ. देशराज सिरसवाल
प्रवक्ता (दर्शनशास्त्र),
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय
सेक्टर-11 चण्डीगढ ।

चिन्तन करना, सोचना, विचारना एवं मनन करना मानव प्रकृति का स्वभावगत लक्षण है । किसी भी देश, समाज तथा प्रान्त में व्यक्ति की समाज एवं वातावरण के प्रति निरन्तर प्रतिक्रिया होती रहती है । इस प्रतिक्रिया के माध्यम से कल्पनाप्रिय तथा अन्तर्दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति विश्व तथा मानव समाज के बारे में दार्शनिक निष्कर्ष निकालते हैं । ये विशेष व्यक्ति अपने दार्शनिक चिन्तन का युक्तिपूर्वक प्रतिपादन करते हैं। उनका दार्शनिक चिन्तन युक्तिपूर्ण होने के कारण चिन्तनशील व्यक्तियों के ऊपर अपना प्रभाव छोडता है । ये चिन्तनशील व्यक्ति अपने चिन्तन का प्रचार लेख, भाषण, शिक्षण, वार्तालाप इत्यादि द्वारा आम जनता में करते है । कुछ समय बीतने के बाद यह दार्शनिक चिन्तन, धार्मिक, नैतिक एवं सौन्दर्य सम्बन्धी विश्वास में रूपान्तरित हो जाता है । यह विश्वास किसी भी समाज में रीति, परम्परा और मान्यता बनकर रह जाता है । प्रस्तुत लेख में हम दर्शनशास्त्र की भारत में समकालीन स्थिति और उसकी उपादेयता का वर्णन करेंगे।

दर्शन का अभिप्राय

दर्शन सम्बन्धी विभिन्न मत हमें प्राय देखने को मिलते हैं । यहां पर कुछ मत प्रस्तुत है:

डॉ. धर्मेन्द्र गोयल के अनुसार, ''दर्शन हमारी संकल्पनाओं को प्राय: उचिततम समायोजन देने में अपनी उपादेयता मानता है। इस दृष्टि से दर्शन चूंकि वैज्ञानिक प्रक्रिया है और सभी प्रकार के विचार तन्त्रों जैसे धर्म, कर्मठता, ज्ञान, विज्ञान, इतिहास, कला, साहित्य, संस्कृति के स्वरूप की व्याख्या करना दर्शन चर्चा और स्थापनाओं की सामान्य विचार वस्तु होती है।''[1] आगे वे कहते है कि दर्शन का कार्य यथार्थ, वास्तविकता, सत्ता, अस्तित्व, सत्, परम तत्त्व, सार्वकालिक प्रारूपों (यौक्तिक, व्यावहारिक, विवरणात्मक, भाषाई नियामक, सत्यों इत्यादि) की व्याख्या करना और अर्थ को समझना है ।[2]

डॉ राधाकृष्णन् के अनुसार, ''दर्शन का कार्य विश्लेषण, स्पष्टीकरण है । हर तरह की जिज्ञासा की भांति ही इसकी प्रणाली आनुभविक, प्रयोगात्मक, विश्लेषणात्मक है । इसका कार्य यथासाध्य मानव ज्ञान के बीच का अन्तर बताना है । मानवीय स्थिति से उत्पन्न होने वाली केन्द्रिय समस्याओं से सम्बन्ध रखने और शब्दों की व्युत्पति एवं अर्थ विकास की औपचारिक व्याख्या पर अपने को केन्द्रित करने से उसे कोई मतलब नहीं ।''[3] उपरोक्त दोनों ही मत एक दूसरे से समानता के साथ-साथ कुछ विपरीतता भी रखते हैं । संश्लेषणात्मक रूप से दर्शन को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि मानव-जीवन के विविध पक्षों का बौद्धिक अवधारणात्मक चिन्तन या ऐसे चिन्तन का आलोचनात्मक मूल्यांकन दर्शन है । (Pure rational conceptual thought regarding different aspects of human life or a critical thought over such kind of thought may be called as philosophy)

परन्तु भारत में दर्शन के वास्तविक स्वरूप को न समझकर उसके अध्ययन सम्बन्धी सापेक्ष अवधारणाओं को ही दर्शन का नाम दे दिया जाता है और साथ ही साथ गौतम, वात्स्यायन, दिङ्नाग और धर्मकीर्ति के देश में जन्मे चिन्तकों ने एक और अक्षम्य अपराध किया है कि पाश्चात्य दर्शन का बिना सोचे-समझे अंधानुकरण कर डाला। गणित, ज्योतिष, रसायन, भौतिक-विज्ञान आदि का समन्वयात्मक अध्ययन किये बिना पश्चिमी दर्शन को नहीं समझा जा सकता ।

भारत में अकादमिक दर्शन के विकृत स्वरूप को देखकर ही डॉ. दयाकृष्ण ने कहा था, ''दर्शन के नाम पर भारत में एक ऐसी अबौद्धिकता का प्रचार किया जाता है जिसे अध्यात्म का नाम देकर बुद्धि के अनन्त आक्षेपों से बचाया जाता

है । बात शब्द की नहीं है यदि दर्शन का अर्थ वही है, जो ये लोग देते हैं तो हमें उसके लिए कोई नया नाम खोजना पडेगा, जिसका बुद्धि ही क्षेत्र है और तर्क जिसका प्राण है । शायद 'फिल्सफा' उसके लिए अधिक उपयुक्त शब्द हो। जहां बुद्धि की बात नहीं है वहां दर्शन की बात करना फिजूल है ।..... जहां बुद्धि की बात नहीं है वहां दर्शन की बात करना फिजूल है। ध्यान लगाइए, खड़ताल बजाइए, प्राणायाम कीजिए, योग साधिए, यह सब खुशी से कीजिए पर कम से कम इनको दर्शन की संज्ञा मत दीजिए । अलग-अलग चीजों को एक नाम से पुकारने से कोई लाभ नहीं है।''[14] यह बात सही है कि यदि दर्शन और दार्शनिक चिन्तन के सही अर्थ को समझना है और उसका समाज कल्याणार्थ प्रयोग करना है तो इसे धर्म और धर्मशास्त्रों के शिकंजों से मुक्त करना पड़ेगा ।

वर्तमान भारत में दर्शनशास्त्र की वस्तुस्थिति को देखकर हम इस बात का अन्दाजा लगा सकते हैं कि यहां पर दर्शनशास्त्र पढ़ने ओर पढ़ाने वालों का नजरिया किस तरह का है । भारतीय समाज में वे खामियां हैं, जिनका वर्णन डॉ. अजीत कुमार सिन्हा कुछ समाजों के संदर्भ में करते हैं, उनका मानना है, ''कुछ ऐसे भी समाज होते हैं जिनमें सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों के कारण, सृजनशील व्यक्तियों को नये विचारों को व्यक्त करने का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता । ऐसे समाज में पुराने विचारों का प्रभाव अधिक रहता है। पुराने विचार समाज में प्रभावशाली होने के कारण ऐसी संस्कृति में परम्पराओं को अधिक महत्व दिया जाता है । आम जनता की मान्यताएं उन परम्पराओं द्वारा प्रभावित होती है। ऐसे समाज में नए विचारों को व्यक्त करने में सृजनशील व्यक्तियों को बाधा होती है। ऐसी परिस्थिति में अल्पसंख्यक सृजनशील व्यक्ति में उनकी सृजनशक्ति प्रसुप्त रह जाती है ।''[15] प्रत्येक समाज का स्वाभाविक विकास तभी हो सकता है जब उसमें नये को अपनाने और समझने की क्षमता हो।

लेकिन भारतीय समाज की वास्तविक स्थिति को देखकर ही डॉ. राधाकृष्णन को यह आह्वान करना पड़ा, ''जब तक कुछेक व्यक्ति लाखों लोगों के भाग्य की डोर अपने हाथ में थामें रहेंगे, तब तक जीवन का यह रूप कृत्रिम, अस्वाभाविक और असंभव बना रहेगा और हमें उन सबकों इस पाश्विक चक्र से मुक्त कराने की कोशिश करनी चाहिए। इसलिए सामाजिक भेद-भाव, आर्थिक विषमता और राजनीतिक तानाशाही को मिटा दिया जाना चाहिए ।''[16] लेकिन इस तरह के आहवान् चाहे वे राधाकृष्णन् दें, विवेकानन्द दें, कृष्णामूर्ति दें, अम्बेडकर दे या गांधी दे व्यर्थ हो जाते हैं, जब भारत के दार्शनिक पण्डे पुरानी घिसी-पिटी मान्यताओं को वैज्ञानिक करार देकर दर्शन के विद्यार्थियों को परोसते हैं ।

ऐसे लोगों की यही मान्यता रही है कि हमारे पूर्वज देव पुरुष थे, सिद्ध थे और बिना किसी यन्त्र और परीक्षण के सम्पूर्ण सत्य का साक्षात्कार कर चुके थे । वे उनके लिखे ग्रंथों को ही सत्य और पूर्णता का भण्डार मानते हैं । ऐसे लोगों को पौराणिकतावादी कह सकते हैं और भारतीय समाज का दुर्भाग्य है कि महाविद्यालयों ओर विश्वविद्यालयों में ऐसे ही लोगों की भरमार है । दूसरी तरफ कुछ ऐसे भी लोग हैं, जोकि अपने को आधुनिकतावादी बताकर किसी नवीन सम्प्रदाय या मत के अनुयायी हो जाते है । इन दोनों तरह के दार्शनिकों से हमारा तर्क यही है कि सत्य जो भी है वह जीवन के प्रवाह में प्रामाणित होता है । पुरानी परम्पराएं अगर वास्तव में अपोरूषेय ओर वैज्ञानिक रही हैं, तो भारतीय समाज के इतिहास को दासता और अमानवीय प्रथाओं का सामना क्यों करना पड़ा ? अगर वे वास्तव में ही मूल्यवान और उपादेय होती तो आज के समाज में उनके विपरीत परिणाम मिलते । डेविड ह्यूम का वक्तव्य समझने योग्य है कि ''यदि लोग गम्भीर दार्शनिकों पर किसी न किसी प्रकार का आक्षेप न करके केवल सुगम दर्शन को अपनाने के पक्ष में ही होते, तो यह मानने में आपत्ति न होती कि व्यक्ति को बिना किसी विरोध के अपनी-अपनी रूचि के अनुसार विचारधारा रखने की पूर्ण स्वतंत्रता है परन्तु जीवन में प्राय ऐसा नहीं देखा जाता क्योंकि गम्भीर विचार प्रणाली जिसे अध्यात्म-दर्शन कहते हैं प्राय: नितान्त अनुपादेय मानी जाती है ।''[17]

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में दर्शन के अध्ययन सम्बन्धी समस्याएं

शिक्षा हमारे आचार विचार में परिवर्तन करती है और उसमें नये ज्ञान की खोज करने के लिए अवलोकन, परीक्षण, चिन्तन और मनन शक्तियों का विकास करती है । उस ज्ञान एवं कौशल के आधार पर हम दर्शन का पुनर्निमाण करते है तथा नई शिक्षा को जन्म देते हैं । उचित शिक्षा के अभाव में सारे चिन्तन व विकास कार्य व्यर्थ है । दर्शन सम्बन्धी वर्तमान शिक्षा वर्णनात्मक है न कि मूल्यपरक । दर्शन के अध्येत्ताओं को निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

1. वर्तमान समय में दर्शन का उच्चकोटि का साहित्य क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध नहीं है, केवल अनुवादित ग्रंथ है

जोकि अध्ययन प्रक्रिया में निरसता लाते हैं ।

2. विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के दर्शन अध्यापकों में दर्शन को पढने और पढ़ाने की उचित प्रेरणा की कमी है ।
3. दर्शन का पाठ्यक्रम समयानुकूल और व्यावहारिक नहीं होता और वास्तविक जीवन की समझ से बहुत दूर होता है ।
4. पुस्तकालयों में छात्रोपयोगी पत्र-पत्रिकाओं और ग्रंथों का अभाव रहता है।
5. दर्शन के विभिन्न विभागों और शोध-केन्द्रों में सूचना के आदान-प्रदान की कमी है और सहयोग की भावना नही होती ।
6. शोध कार्य में मिलावट ज्यादा मिलती है और मौलिक लेखन का प्राय: अभाव रहता है ।
7. वर्तमान सरकारी और गैर-सरकारी व्यवसायिक संस्थाओं में दर्शन के प्रचार-प्रसार और विकास की इच्छा की कमी है ।
8. राजकीय संस्थाओं से मिलने वाली छात्रवृति या प्रोत्साहन राशि योग्य व्यक्तियों को न मिलकर, संस्थाओं के अनैतिक सम्बन्धियों के लाभार्थ प्रयोग की जाती है ।
9. विभागों में अच्छे साहित्य के प्रकाशन की कमी है और विद्यार्थियों को लेखन और पाठन की प्रेरणा व प्रकाशन की सुविधा नहीं मिलती ।

वर्तमान की यही आवश्यकता है कि दार्शनिक चिन्तन को उसके सही संदर्भो से जोड़कर मनुष्य, समाज और मानव-जीवन के लिए अर्थवान् बनाया जाए, अमूर्त्तनाओं के बियाबान से उठाकर उसे वास्तविक संसार और जीवन के आमने सामने खड़ा किया जाए । जीवित तथा जागृत मानवीय कर्मो से संयुक्त कर उसे एक सर्वथा नया और क्रांतिकारी चरित्र प्रदान किया जा सकता है ।

दर्शन की समकालीन उपादेयता

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को गतिशील, प्रगतिशील और विकासशील बनाने में दर्शन की उल्लेखनीय भूमिका रही है । यह समाज में नैतिकता व मूल्यों की स्थापना के लिए साध्यों और साधनों की नैतिकता ओर औचित्य का भी निर्धारण करता है । प्रो. हिरियन्ना भी कहते है कि, ''दर्शन सिर्फ सोचने की पद्धति न होकर जीवन पद्धति भी है । वैयक्तिक द्वेष, सामाजिक हिंसा, राष्ट्रीय युद्ध, वैश्विक विनाश, स्वार्थवाद, धन-लोलुपता, भ्रष्टाचार आदि जितनी भी समस्याएं है उनका निवारण केवल समाज में वैचारिक परिवर्तन लाकर ही किया जा सकता है, जोकि केवल दर्शन के व्यवहारिक प्रयोग ओर सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने से हो सकता है ।

उपरोक्त वर्णित समस्याओं के निवारण हेतु प्रो. के. सच्चिदानन्दमूर्ति के विचारों को समझना अति आवश्यक है। उनके अनुसार, ''आधुनिक भारत में कुछ भी महान् दार्शनिक कार्य नहीं हआ, सारा पश्चिम में ही हुआ है और हो रहा है, इस मनोवृत्ति का परित्याग करके समकालीन भारतीय दार्शनिकों का एक दूसरे के अध्यव्यवसाय को गौरव से देखना और उसका विमर्शात्मक अध्ययन करना सीखना चाहिए। हम इंग्लैड और वियना में क्या हो रहा है, यह तो जानते हैं, लेकिन वाराणसी वाले यह नहीं जानते कि आंध्र में क्या हो रहा है और आंध्र वाले यह नही जानते कि उत्तर प्रदेश में या प. बंगाल में क्या हो रहा है । भारतीय दार्शनिकों की रचनाओं का प्रचार भारत में सुव्यवस्थित रूप से होना चाहिए, यह काम अच्छी प्रचार-संस्थाओं या विश्वविद्यालयों के प्रकाशन-विभागों द्वारा होना चाहिए । केवल विदेशीय प्रचार-संस्थाओं (उदाहरण एलेन अनविन, कीगन पाल आदि) से प्रकाशित किताबे ही अच्छी हो सकती हैं, विदेशी विश्वविद्यालयों में पढे हुए और उनसे स्नातक हुए लोग ही अच्छे चिन्तक हो सकते हैं - ऐसा विश्वास छोड़ देना चाहिए, गोष्ठियों में भाग लेना चाहिए और उनमें विवाद और सम्वाद इत्यादि होना चाहिए । इसमें कुछ काम मौखिक और कुछ चिट्ठी-पत्री द्वारा हो सकता है। भारतीय दार्शनिकों को एक-दूसरों की रचनाओं को सादर पढ़ना, निष्पक्ष भाव से विमर्श-करना और एक दूसरे का खंडन-मंडन करना यह सब काम करना चाहिए । वादे-वादे जायते तत्त्वबोध:''[8]

डॉ. राधाकृष्णन् भी इस तरह का मत रखते है । वे कहते है कि, ''हमें उत्तराधिकार में एक महान् और अमूल्य विरासत प्राप्त हुई है, लेकिन यह समझते रहना घातक है कि एक अद्वितीय विरासत के उत्तराधिकारी है । इस उत्तराधिकार का निर्वाह नये उपक्रमों में किया जाना चाहिए : हमें नई उपलब्धियां हासिल करने की दिशा में आगे बढ़ना है । हमें हमेशा

सत्य के अन्वेषण में लगे रहना चाहिए ।''[9] दर्शन का कार्य तो मानव जीवन के सभी पहलुओं के लिए चाहे वे आर्थिक हों या राजनैतिक अथवा सामाजिक हों, सम्यक् दृष्टि प्रदान करना, व्यवहार की कसौटियां निश्चित करना तथा आदर्शों को निर्धारित करना तथा पर्याप्त मार्ग बतलाना है।

डेविड ह्यूम का भी मत है, ''किसी भी कला अथवा व्यवसाय में, चाहे वे हमारे जीवन अथवा व्यापार से कितने ही निकट सम्बन्ध रखते हों, प्रामाणिक दृष्टि रखना प्रस्तुत कला अथवा व्यवसाय की पूर्णता के अधिक निकट ले आता है और फलतः समाज के हित-साधन में अधिक लाभप्रद होता है और यद्यपि दार्शनिक लौकिक व्यवसाय से दूर रहता है परन्तु दार्शनिक प्रतिभा यदि अपनाई जाए तो वह समग्र समाज में प्रस्तुत होकर हर कला और व्यवसाय में भी भली प्रकार प्रामाणिकता प्रदान कर सकती है।''[10] आगे वे एक कूटनीतिज्ञ, वकील, सेनानायक इत्यादि के कार्य में दर्शन के प्रयोग का उदाहरण देते हैं । दर्शन आदर्श समाज के स्वरूप के साथ-साथ राजनीतिक मूल्यों का भी निर्धारण करता है । लोकतंत्र, साम्यवाद, समाजवाद, अधिनायकवाद, उदारवाद, आदर्शवाद आदि राजनैतिक सिद्धान्तों व प्रणालियों का सम्यक् आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक मूल्यांकन का कार्य भी करता है ।[11]

डॉ शान्ति प्रकाश आभेय मानसिक तनावों से मुक्ति में दार्शनिक दृष्टिकोण के महत्त्व का वर्णन करते हैं । उनके अनुसार, ''सब मानसिक तनावों या दुःखों का मूल कारण अविद्या है । सम्यक् दर्शन से ही इसका विनाश होकर सदैव के लिए पूर्ण रूप से मानसिक तनावों से मुक्ति प्राप्त होती है । दर्शन जगत् तथा जीवन सम्बन्धी समस्त सांसारिक उलझनों तथा मानसिक तनावों से मुक्त कर पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करता है । .....अतः समस्त मानसिक तनावों से सदैव के लिए पूर्ण रूप से मुक्ति प्राप्त करने का एक मात्र उपाय दार्शनिक दृष्टिकोण ही है ।''[12]

प्रत्यक्ष रूप से दर्शन हमारी आर्थिक, सामाजिक, और राजनैतिक समस्याओं से जुड़ा दिखाई नहीं देता लेकिन वह हमें एक ऐसी जीवन दृष्टि देता है जिससे हम इन समस्याओं को हल कर सकते हैं। अतः विश्व की वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए उच्च शिक्षा में वैज्ञानिक विश्लेषण एवं दार्शनिक विचार पर बल देना आवश्यक है। पाश्चात्य देशों में विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर पर दर्शन के अध्ययन-अध्यापन पर काफी जोर दिया जा रहा है । अगर इस कार्यक्रम को भारतीय शिक्षा पद्धति में भी लागू किया जाये तो यहां के लोगों के चिन्तन और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन लाया जा सकता है । निःसन्देह, केवल मात्र दार्शनिक विचार ही व्यक्ति के जीवन और समाज की संस्कृति को नया और युक्तिपूर्ण आयाम दे सकते हैं, जिससे की व्यक्ति और समाज के सम्पूर्ण विकास की अवधारणा फलीभूत हो सकती है ।

संदर्भ-सूची

1. डॉ. धर्मेन्द्र गोयल, भाषा दर्शन, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ, 1991, पृ. 01
2. वही, पृ. 17
3. डॉ. राधाकृष्णनन्, सत्य की ओर, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1969, पृ. 26
4. दयाकृष्ण, ज्ञानमीमांसा, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1973, पृ. 02
5. डॉ. अजीत कुमार सिन्हा, ''दार्शनिक चिन्तन तथा विश्वास'' हरियाणा : एक सांस्कृतिक अध्ययन, भाषा विभाग हरियाणा, चण्डीगढ़, 1978, पृ. 244
6. डॉ. राधाकृष्णनन्, हमारी विरासत, हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली, 2004, पृ. 66
7. डेविड ह्यूम, मानव बुद्धि सम्बन्धी विवेचन, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनऊ, 1965, पृ. 5
8. के.सच्चिदानन्दमूर्ति, ''आधुनिक भारतीय दर्शन : अन्वीक्षण'', समकालीन भारतीय दर्शन, अखिल भारतीय दर्शन परिषद् (पंजाब) 1962, पृ. xxxviii - xxxix
9. डॉ. राधाकृष्णनन्, हमारी विरासत, पृ. 21
10. डेविड ह्यूम, मानव बुद्धि सम्बन्धी विवेचन, पृ. 6-7
11. डॉ. श्याम किशोर सिंह, ''सामाजिक संरचना में दर्शन की भूमिका'' दार्शनिक त्रैमासिक, वर्ष 52, अंक 4, पृ. 21
12. डॉ. शान्ति प्रकाश आभेय, ''मानसिक तनावों से मुक्ति में दार्शनिक दृष्टिकोण केसे सहायक हो सकता है?'' चिकित्सा सेवा, वर्ष 01, अंक 1, मई 1975, पृ. 144